

**इलाहाबाद उच्च न्यायालय****लखनऊ****आपराधिक अपील संख्या - 285 वर्ष 2005**

सीता राम एवं अन्य

.....अपीलकर्ता(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिवादी(गण)

अपीलकर्ता (गण) के अधिवक्ता : पुष्पेन्द्र कुमार सिंह, आशीष कुमार तिवारी

प्रतिवादी (गण) के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या- 28**माननीय न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव****अस्वीकरण:**

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

1. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।
2. यह अपील अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट/द्रुतगामी न्यायालय संख्या 4, हरदोई के न्यायालय द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 333 वर्ष 04 में दिनांक 31.01.2005 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दाखिल की गई है। उक्त प्रकरण मुकदमा अपराध संख्या 4 वर्ष 2004: राज्य बनाम सीताराम और अन्य से संबंधित है, जिसमें अपीलकर्ता को धारा 323 व 34 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत छह माह के साधारण कारावास की, और धारा 325 व 34 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत तीन वर्ष के कारावास तथा प्रत्येक पर 500/- रुपये के जुर्माने का दंडादेश सुनाया गया है, जिसमें जुर्माना अदा न करने के व्यतिक्रम में अतिरिक्त सजा का प्रावधान भी शामिल है।
3. अभियोजन पक्ष का प्रकरण यह है कि 18.11.2004 को लगभग शाम 5:00 बजे, शिकायतकर्ता सुरेश का बेटा मुकेश खेत से साइकिल पर चारे का बोझ लादकर लौटा और उसे ईंटों वाली सड़क (खरंजा) के किनारे खड़ा कर दिया। उस समय अभियुक्त—सीताराम, कमलेश और अशोक—एक ठेले पर इंजन लेकर वहाँ पहुँचे और साइकिल न हटाने के लिए उस लड़के को गालियाँ देने लगे। जब शिकायतकर्ता की पत्नी देवकी ने बीच-बचाव किया, तो अभियुक्त गण द्वारा उसे पीटना प्रारम्भ कर दिया गया। शोर-शराबा सुनकर शिकायतकर्ता सुरेश और उसके पिता प्रभु उसे बचाने के लिए बाहर आए जिस पर अभियुक्त गण ने उन पर भी लाठियों और डंडों से हमला कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता की पत्नी और पिता को क्षति कारित हुई।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

4. उक्त घटना के संबंध में शिकायतकर्ता द्वारा पुलिस थाना पिहानी, जिला हरदोई में एक मौखिक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी आधार पर दिनांक 18.11.2004 को एन.सी.आर/गैर-संज्ञेय रिपोर्ट संख्या 201/03 दर्ज की गई, जिसे बाद में मुकदमा अपराध संख्या 4/04 के तहत एक नियमित प्रथम सूचना रिपोर्ट में बदल दिया गया; और चोट रिपोर्ट के अनुसार मामले में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323, 325 और 504 जोड़ दी गई तथा मामले को विवेचना अधिकारी को सौंप दिया गया।

5. विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा नज़री तैयार किया, गवाहों के बयान दर्ज किए, और चोट की रिपोर्ट तथा एक्स-रे रिपोर्टें एकत्र की। विवेचना पूरी करने के पश्चात उन्होंने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 325, 504 और 308 के तहत आरोप-पत्र प्रस्तुत किया।

6. इसके पश्चात विद्वान मजिस्ट्रेट के न्यायालय में आरोप पत्र जमा किए जाने के पश्चात उक्त प्रकरण सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया, जहाँ इसे सत्र परीक्षण संख्या 333/04 के रूप में दर्ज किया गया। विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण/अपीलकर्तागण के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 308/34, 325/34, 323/34 और 504 के अंतर्गत आरोप विरचित किए। अभियुक्तगण ने आरोपों से इनकार किया और विचारण की मांग की।

7. अपने प्रकरण को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने छह गवाहों की परीक्षा की:

अभियोजन साक्षी-1 शिकायतकर्ता सुरेश, अभियोजन साक्षी-2 प्रभु, अभियोजन साक्षी-3 डॉ. सत्येंद्र

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

विक्रम सिंह, अभियोजन साक्षी-4 श्रीमती देवकी, अभियोजन साक्षी-5 उप निरीक्षक दल बहादुर सिंह, और अभियोजन साक्षी-6 डॉ. एस के रस्तोगी।

8. अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने का कार्य पूर्ण हो जाने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभियुक्तों/अपीलार्थियों के बयान दर्ज किए गए, जिसमें उन्हें समस्त साक्ष्य तथा उनके विरुद्ध मौजूद अन्य दोषारोपक परिस्थितियों के विषय में स्पष्टीकरण दिया गया, इसके प्रत्युत्तर में अभियुक्त-अपीलार्थीगण ने अभियोजन पक्ष की कहानी तथा अपने विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने विशेष रूप से यह कथन किया कि उन्हें इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है।

9. इसके पश्चात विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सुनने और मौखिक तथा दस्तावेजी, दोनों प्रकार के सभी साक्ष्यों की जाँच करने के पश्चात अभियुक्तगण/अपीलकर्तागण को दोषी पाया। न्यायालय ने अपीलकर्तागण को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323/34 के अंतर्गत छह महीने की साधारण कारावास और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 325/34 के अंतर्गत तीन वर्ष के कारावास तथा प्रत्येक पर 500/- रुपये के जुर्माने का दण्डादेश दिया जुर्माना न देने के व्यतिक्रम में अतिरिक्त सज़ा का प्रावधान भी शामिल था, साथ ही उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 308/34 और 504 के अंतर्गत लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया।

10. आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, अभियुक्त-अपीलकर्तागण ने इस न्यायालय के समक्ष यह अपील प्रस्तुत की है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

11. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि उन्होंने दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है, तथापि इस स्तर पर वे केवल दंडादेश के संबंध में ही अपील पर बल देना चाहते हैं और अपील के गुण-दोष के आधार पर उस पर बल नहीं देना चाहते।

12. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उत्तर प्रदेश राज्य की अपनी स्थानीय परिवीक्षा विधि है, अर्थात् उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938। उन्होंने आगे यह भी कथन किया कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (केंद्रीय कानून) (एतस्मिनपश्चात् 1958 का अधिनियम के रूप में संदर्भित) भी उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होता है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2017) 2 एससीसी 198 के प्रकरण में निर्णय दिया था। इसलिए अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि इन दोनों में से किसी भी अधिनियम के अधीन लाभ देना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है।

13. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यह घटना 22 वर्ष पूर्व हुई थी और अपीलकर्तागण के विरुद्ध कोई और आपराधिक इतिहास नहीं है। इस समय अपीलकर्ता संख्या 1- सीताराम की आयु 80 साल, अपीलकर्ता संख्या 2- कमलेश की आयु 55 वर्ष और अपीलकर्ता संख्या 3- अशोक की आयु 50 वर्ष है, इसलिए उन्हें प्रथम अपराध करने वाले का लाभ दिया जा सकता है और अपीलकर्तागण को 1958 के अधिनियम का लाभ प्रदान किया जा सकता है। उन्होंने आगे यह भी कथन किया कि अपीलकर्ता प्रथम अपराध करने

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

वाले हैं और उन्हें पूर्व में किसी भी प्रकरण में दोषी नहीं ठहराया गया है। उन्होंने आगे यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय ही है जो अभियुक्त-अपीलकर्तागण को 1958 के अधिनियम की धारा 4 के अधीन मिलने वाले लाभ पर विचार कर सकता है।

14. दूसरी ओर विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा अपील का विरोध किया गया और यह प्रस्तुत किया गया कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी तात्त्विक अनियमितता या अवैधता नहीं की गई है, और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को दृष्टिगत रखते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी गण को उचित प्रकार से दोषसिद्ध किया गया है।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता आगे यह भी कहते हैं कि 1958 के अधिनियम का धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्तागण को कुछ ऐसी शर्तों के अधीन दिया जा सकता है, जो 1958 के अधिनियम की धारा 4 में ही विनिर्दिष्ट हैं।

16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क पर विचार करने से पूर्व, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 और 4 को उद्धृत करना उपयोगी होगा:

“3. कतिपय अपराधियों को भर्त्सना के पश्चात छोड़ देने की न्यायालय की शक्ति - “जब कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अधीन दण्डनीय कोई अपराध अथवा भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दो वर्ष से

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अनधिक के लिए कारावास या जुर्माने अथवा दोनों से दण्डनीय कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी यह राय है कि प्रकरण की परिस्थितियों को जिसके अंतर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है ध्यान में रखते हुए ऐसा करना समीचीन है तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी भी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे दण्डित करने या उसे धारा 4 के अधीन सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने के बजाय उसे सम्यक भर्त्सना के पश्चात छोड़ सकेगा।

स्पष्टीकरण— इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि के अंतर्गत इस धारा या धारा 4 के अधीन उसके विरुद्ध किया गया कोई पूर्व आदेश भी है।

4. कतिपय अपराधियों को सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति - (1) जब कोई व्यक्ति ऐसा कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डित नहीं है, और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को जिसके अंतर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है, ध्यान

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

में रखते हुए सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ देना समीचीन हो, तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे तुरंत दण्डित करने के बजाय, निदेश दे सकेगा कि उसे प्रतिभूओं के सहित या उनके बिना, उसके द्वारा ऐसा बंधपत्र देने पर छोड़ दिया जाए की वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान, जैसी न्यायालय निर्दिष्ट करे, आहूत किये जाने पर उपस्थित होगा और दण्डादेश प्राप्त करेगा और इस बीच वह परिशांति कायम रखेगा और सदाचारी रहेगा:

17. 1958 के अधिनियम की धारा 4 वहाँ लागू होती है, जहाँ कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए सजा न तो आजीवन कारावास है और न ही मृत्युदंड। न्यायालय ऐसे अभियुक्त को इस धारा में उल्लिखित अनुसार एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करते समय न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व प्रकरण की परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और अपराध की प्रकृति पर भी विचार करना आवश्यक होता है।

18. जहाँ तक अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ प्रदान किए जाने की प्रार्थना का प्रश्न है, वहाँ तक विधिक स्थिति तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर चर्चा करना आवश्यक है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444 के प्रकरण में अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य और प्रयोजन पर चर्चा करते हुए प्रस्तर संख्या 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

“4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत को मान्यता दिए जाने का ही परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के बजाय उसका सुधार करना अधिक है। मोटे तौर पर कहें तो यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के बीच तथा उन अपराधियों के बीच जो मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी हैं और उन अपराधियों के बीच जो किसी कम गंभीर अपराध के दोषी हैं, अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह निर्देश जारी किया गया है कि वह उन्हें कारावास का दंड न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

भी शामिल हैं को देखते हुए उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन व्यवहार करना उचित नहीं है।”

20. इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय ने वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य (1981) 1 एससीसी 447 : एआईआर 1981 एससी 643 के प्रकरण में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 जिसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के साथ पढ़ा जाए के अनुपालन के संबंध में बेंच/पीठ और बार के कर्तव्यों पर चर्चा करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:—

“जिस अपराध के लिए सजा सुनाई गई है, वह ऐसा है जिस पर धारा 360, या कम से कम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 लागू होता है। हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्री अपूर्ण है, क्योंकि विचारण न्यायालय ने दण्डादेश पारित करने के अपने दायित्वों के निर्वहन में औपचारिकता मात्र बरती है। हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि किसी अभियुक्त को सजा सुनाना, विवेक का प्रयोग करने वाला एक संवेदनशील कार्य है; यह कोई सामान्य या यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है जो मात्र किसी अंदाजे या अटकल पर आधारित हो। विचारण न्यायालय को ऐसी सामग्री एकत्रित करनी चाहिए थी जो उस मामले के परिस्थिति के अनुसार उचित दण्ड देने में सहायता करती। अपराध करने वाले की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक अत्यंत प्रासंगिक होते हैं, यद्यपि व्यवहार में आपराधिक न्यायालयों ने अपराधी के सामाजिक परिवेश अथवा व्यक्तिगत परिस्थितियों पर शायद ही कभी ध्यान दिया है। भले ही धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता लागू न होती हो, फिर भी

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

दण्डादेश पारित करने वाले न्यायालय का यह दायित्व है कि वह इतनी सक्रियता दिखाए कि ऐसे तथ्य एकत्रित कर सके जिनका दण्ड पर प्रभाव पड़ता हो और जिनका उद्देश्य अपराधी का सुधार करना हो। इस मामले में ऐसी सामग्री न होने की वजह से हमें अधिवक्ताओं से भी ज़्यादा मदद नहीं मिल पाई है। सत्य तो यह है कि बार के सदस्य भी उन विधिक प्रावधानों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं, जिनका सम्बन्ध किसी अपराधी के साथ ऐसा व्यवहार करना है कि वह अपराध-मुक्त हो जाए। हम इस बात पर इसलिए बल दे रहे हैं, क्योंकि सजा में नरमी बरतने से जुड़े विधियों को लघु अधिनियम/माईनर एक्ट माना गया है, अतः इसका महत्व नगण्य है। यह पूर्ण रूप से गलत दृष्टिकोण है, और यदि बार मदद न करें, तो भी बेंच/पीठ को दंडादेश देने के उस मानवीय उद्देश्य को पूर्ण करना चाहिए जो अपराधी परिवीक्षा अधिनियम जैसे विधियों में छिपा हुआ है।”

21. यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 लॉ सूट (आल) 1343** के प्रकरण में इस बात पर बल दिया है कि उचित प्रकरणों में परिवीक्षा विधि को लागू किया जाए और अभियुक्त व्यक्तियों को इस लाभकारी विधि का लाभ दिया जाए। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:—

“ऐसा लगता है कि ऊपर बताए गए लाभकारी विधान को नजरअंदाज कर दिया गया है और यहाँ तक कि न्यायाधीश भी विधि के इस प्रावधान को

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

व्यावहारिक रूप से भूल चुके हैं। इसलिए प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व इस न्यायालय को प्रतीत होता है कि यदि विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय के लिए सावधानी का एक शब्द नहीं लिखा गया, तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहूँगा। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल/ महा निबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को भेजें, जो बदले में यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की प्रति उनके अधीन कार्यरत सभी न्यायिक अधिकारियों के मध्य वितरित हो और इस निर्णय का सख्ती से अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। राज्य के जिला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक महीने सभी न्यायालयों से अर्थात् ऐसे प्रकरणों से निपटने वाले विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय से आख्या मंगाएँ और यह बताएं कि कितने प्रकरणों में अभियुक्त को उपर्युक्त प्रावधानों का लाभ प्रदान किया गया है। जिला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक मासिक बैठक में ऐसे प्रकरणों की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करें। संबंधित जिला न्यायाधीश, रजिस्ट्रार जनरल/महा निबंधक को एक मासिक विवरण भेजेंगे, जिसमें यह बताया जाएगा कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने कितने प्रकरणों में अभियुक्त को उपर्युक्त लाभकारी विधान का लाभ प्रदान किया है। इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन हेतु रजिस्ट्रार जनरल/महा निबंधक के समक्ष रखी जाए।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

22. इसके अतिरिक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद (2004) 7 एससीसी 659 के मामले में अपीलकर्तागण को अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणी की है:—

अभियुक्त की ओर से उपसंजात हुए विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह दुर्घटना वर्ष 1990 की है। दोनों पक्ष शिक्षित हैं और पड़ोसी भी हैं। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रार्थना की, कि अभियुक्त को अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई यह प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। यह दुर्घटना दस वर्ष से भी अधिक पुरानी है। यह विवाद पड़ोसियों के मध्य नाली के अधिकार को लेकर हुए एक मामूली से मुद्दे पर था। यह दुर्घटना गुस्से के आवेश में हुई थी। सभी पक्ष शिक्षित हैं और आपस में दूर के रिश्तेदार भी हैं। यह दुर्घटना ऐसी नहीं है जिसके लिए अभियुक्त को कारावास की सजा भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में यह एक ऐसा उपयुक्त मामला है जिसमें अभियुक्त को सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र भरने का निर्देश देकर परीवीक्षा पर रिहा कर दिया जाना चाहिए।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

23. अब सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य (एआईआर 2005 एससी 3534)

के प्रकरण में अभियुक्तगण/अपीलकर्तागण को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के मुद्दे पर आते हुए, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"विवेकपूर्ण शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय को प्रकरण की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की गंभीरता और पीड़ित पर उस अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत अभियुक्त को मिलने वाला लाभ अधिनियम के प्रावधानों में निहित सीमाओं के अधीन है, और शब्द 'सकता है' स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि यह विवेक न्यायालय के पास है कि वह अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 या 4 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपराधी को रिहा करे या नहीं। 'अपराधी परिवीक्षा अधिनियम' की धारा 4 के अधीन शक्तियाँ न्यायालय में तब निहित होती हैं, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास की सज़ा नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी ठहराते समय किया जा सकता है, और यदि न्यायालय को लगता है कि मामले की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है को ध्यान में रखते

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

हुए अभियुक्त को यह लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी कर सकता है; और साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।"

24. यह भी उल्लेखनीय है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** (एआईआर 2017 एससी पृष्ठ 660) के मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1965 एससी 444) के मामले में न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह राय व्यक्त की:-

"यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के बजाय उसका सुधार करना अधिक है। मोटे तौर पर कहें तो यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के मध्य तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के मध्य अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को अधिनियम के

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक दिया गया है, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह निर्देश दिया गया है कि वह उन्हें कारावास का दण्ड तब तक न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है को देखते हुए; उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन व्यवहार करना उचित नहीं है।”

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जगत पाल सिंह व अन्य बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2000 एससी 3622 के मामले में अभियुक्तों की धारा 323, 452 और 506 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए भी, उन्हें परीक्षा का लाभ प्रदान किया है, और अभियुक्तों को इस शर्त पर रिहा कर दिया है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बंधपत्र निष्पादित करेंगे, जिसमें वे छह महीने की अवधि तक सदाचरण और शांति बनाए रखने का वचन देंगे।

26. यह बात ध्यान देने योग्य है कि कथित घटना सर्व प्रथम वर्ष 2004 में हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्तागण को पिछले 22 वर्षों से इस प्रकरण में तकलीफ उठानी पड़ी है, और अपीलकर्तागण के विरुद्ध कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। वर्तमान में अपीलकर्ता संख्या 1—सीताराम की आयु 80 वर्ष, अपीलकर्ता संख्या 2—कमलेश की 55 वर्ष और अपीलकर्ता संख्या 3—अशोक की 50 वर्ष है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

27. प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मेरा यह मत है कि अभियुक्त-अपीलकर्तागण को 1958 के अधिनियम के प्रावधानों का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए।

28. उपरोक्त चर्चा के आधार पर जहाँ तक अपीलकर्तागण सीता राम, कमलेश और अशोक की दोषसिद्धि का संबंध है, उसे बरकरार रखा जाता है, परन्तु उनके दण्डादेश में संशोधन किया जाता है। अपीलकर्तागण को जेल भेजने के बजाय उन्हें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है, और उन्हें निर्देश दिया जाता है कि वे संबंधित जिला परिवीक्षा अधिकारी के समक्ष अपने निजी बंधपत्र के साथ-साथ 20,000/- रुपये के दो निजी बंधपत्र भी प्रस्तुत करें, साथ ही वे इस आशय का एक वचनपत्र भी दें कि वे आज से प्रारंभ होने वाली दो वर्ष की अवधि के दौरान शांति और सदाचरण बनाए रखेंगे। ये बंधपत्र सीता राम, कमलेश और अशोक द्वारा इस निर्णय की तारीख से एक महीने के भीतर पेश किए जाने हैं।

आगे यह भी निर्देश दिया जाता है कि प्रत्येक अपीलकर्ता आज से दो माह के भीतर विचारण न्यायालय में 5,000 रुपये की राशि जमा करेगा, और विचारण न्यायालय उक्त राशि को मुआवजे के तौर पर घायल व्यक्तियों-देवकी और प्रभु शिकायतकर्ता की पत्नी और पिता के पक्ष में बराबर-बराबर वितरित कर देगा। यदि वे जीवित नहीं हैं, तो उक्त राशि उनके विधिक उत्तराधिकारियों के पक्ष में जारी की जाएगी।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



29. उपर्युक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन होने की स्थिति में **अपीलकर्तागण—सीता राम, कमलेश और अशोक** को हिरासत में ले लिया जाएगा और उन्हें दिया गया दण्डादेश भुगतना होगा।
30. उपर्युक्त संशोधन के साथ प्रस्तुत आपराधिक अपील **आंशिक** रूप से **स्वीकार** की जाती है।
31. आदेश की एक प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय को भी अनुपालन हेतु भेजी जाए।
32. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवश्यक अनुपालन हेतु इस आदेश को संबंधित न्यायालय को सूचित करे।
33. अवर न्यायालय का अभिलेख यदि कोई हो तो उसे भी संबंधित जिला न्यायालय को वापस प्रेषित किया जाय।

(न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव)

18 मार्च, 2026

अरविन्द

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।